* वन्देजिनवरम् *

आर्य्यसमाजी स्वामी दर्शनानन्द
जी सरस्वतीके तारीख ११
जुलाई सन् १९१२ ई०
को किये हुए

बीस प्रश्नोंके उत्तर

श्रीकुंवर दिग्विजयसिंह जी, बीधूपुरा
इटावह लिखित ॥

जिसको

चन्द्रसेन जैनवैद्य मन्त्री श्रीजैन तत्त्वप्रकाशिनी
सभाने छपाकर प्रकाशित किया ॥

श्रीवीर निर्वाण सम्वत् २४३८

Printed by B. D. S. at the Brahm
Press—Etawah.

कीमत)॥ | सैकड़ा २)

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा की

विकाऊ पुस्तकें ।

आर्यों का तत्त्वज्ञान … … … … … … … …	की०)॥ सै० २)
ईश्वर का कर्तृत्व … … … …	की० १ पाई सै० ।≡)
कुरीति निवारण … … … … …	की०)। सै० १)
भजनमण्डली प्र० … … … … …	की०)॥ सै० २)
नास्तिकत्वपर विचार … … … …	की०)। सै० १)
धर्मामृत रसायन … … … … …	की० -) सै० ५)
आर्यमतलीला … … … … …	की० ।=) सै० २४)
भजनमण्डली द्वि० … … … … … …	की०)॥ सै० २)
भजन स्त्री शिक्षा … … … … …	की०)। सै० १)
सृष्टिकर्तृत्व मीमाँसा … … … … … …	की० -) सै० ५)
भूगोल मीमांसा … … … … …	की०)॥ सै० २)
आर्योंकी प्रलय … … … … …	की० -) सै० ५)
कुंवर दिग्विजयसिंह जी का सचित्र जीवन चरित्र और व्याख्यान … … … …	की०)॥ सै० ३)

मिलने के पते:—

१—मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य,
इटावा यू० पी०

२—ऋषभदास केवलचंद पांड्या
जैन, गोटे वाले नया बाजार-अजमेर

+ वन्दे जिनवरम् +

आर्यसमाजी स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वतीके तारीख ११ जुलाई सन् १९१२ ईस्वीको कियेहुये

बीस प्रश्नों के उत्तर ।

(१) प्रश्न-मुक्तिमें जो अन्तिम शरीरसे ऊन परिमाण वाला जीव होता है वह भौतिक होता है वा अभौतिक ? वह किस प्रकार सिद्ध शिलाके ऊपर जाता है ? तूंबीवाला दृष्टान्त तो ठीक नहीं, क्योंकि तूंबी मिट्टी लगी हुई होतीहै, जिसका जलसे नाश होना सम्भव है। यदि कर्म अनादि हैं जिनका लगना किसी तरह नहीं हुआ तो वे कैसे नाश हो सकते हैं ? ।

(उत्तर) इस संसारमें जो जो द्रव्य या वस्तुयें हैं उन का कुछ न कुछ आकार अवश्य है, क्योंकि यदि आकार न मानिये तो खर विषाणवत् वे अवस्तु हो जावें। जीव भी एक द्रव्य है अतः उसका आकार (स्वरूप) अवश्य है। जीवमें दीप प्रकाशवत् उसके प्रदेशोंके संकोच विस्तारकी शक्ति है, अर्थात् कर्मानुसार जिस शरीर को वह प्राप्त होता है उसीके अनुसार उसके प्रदेशोंका संकोच और विस्तार भी बराबर होता रहता है। कारणके नाश होनेसे कार्यका भी नाश हो जाता है अतः मोक्षमें कर्मोंके सर्वथा अभाव हो जानेसे उनके द्वारा होने वाला जीवके प्रदेशोंका संकोच विस्तार होना भी नाश हो जाता है और उसके प्रदेशोंका आकार अन्तिम (मोक्ष प्राप्त करनेके) शरीरसे किञ्चित् ऊन रहता है। मोक्षमें जीवके भौतिक (पुद्गल परमाणुओंसे बनेहुये औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण इन पांच शरीरोंमेंसे कोई भी) शरीर नहीं रहता परन्तु उसके प्रदेशोंका आकार अन्तिम श-

रीरसे किञ्चित् ऊन अमौतिक (पुद्गल, धर्म, अधर्म; आकाश, और काल इन पांच द्रव्योंसे सर्वथा भिन्न) रहता है। जीव में ऊर्ध्वगमनका स्वभाव है और जबतक उसमें कर्ममल लगा रहता है तबतक उससे भारी होकर वह ऊपरको नहीं जा सकता। जिस समय कर्मोंका जीवसे सर्वथा अभाव हो जाता है उसका गमन सिद्धशिलासे बारह योजन ऊंचे लोकाकाश के अन्ततक (जहां तक उसको गमनमें सहकारी उदासीन निमित्त कारण धर्म द्रव्य है) होता है। जिस प्रकार सूक्ष्म अग्निके परमाणु कड़ाह या बटलोही आदिके पेंदेको भेदकर ऊपर निकल जाते हैं उसी प्रकार सूक्ष्मातिसूक्ष्म अरूपी जीवको पौद्गलिक सिद्ध शिला आदि पदार्थ ऊपर जानेमें बाधक नहीं होते। तूंबी वाला दृष्टान्त बिलकुल ठीक है, क्योंकि जिस प्रकार मिट्टी लगीहुयी तूंबी जलके नीचे पड़ी रहती है उसी प्रकार कर्म लगाहुआ जीव भी इस संसारमें पड़ा रहता है। जैसे तूंबी की मिट्टी छूटजाने पर वह जलके ऊपर आजाती है तैसे कर्मोंसे छूटाहुआ जीव लोकके शिखर पर पहुंच जाता है। कर्मोंके नाश हो जानेसे प्रयोजन उनका आत्मासे छूटजाना है। कर्म धाराप्रवाहकी अपेक्षा अनादि और व्यक्तिकी अपेक्षा सादि हैं, अर्थात् कोई भी ऐसा समय न था जिस समय आत्माके साथ कर्मोंका सम्बन्ध न हो इस अपेक्षा अनादि और आत्माने उनमेंसे प्रत्येकको किसी समय विशेषमें ही बन्ध किया है इस अपेक्षा सादि हैं। कर्मका बन्ध आत्मामें राग द्वेषके कारण होता है। जिस समय आत्मा अपने रागद्वेषको नष्ट करदेता है उस समय नवीन कर्मोंका बन्ध उसमें नहीं होता और प्राचीन कर्म अपनी स्थितिको पूर्णकर या ध्यानाग्नि द्वारा उदीरणाको प्राप्त होकर आत्मासे सम्बन्ध छोड़ जाते हैं और इस प्रकार आत्मा सकल कर्मोंसे विप्रमुक्त होकर मोक्षको प्राप्त करलेता है॥

(२) प्रश्न-क्या प्रत्येक द्रव्य जो अनादिसे पर्याय बदल रहा है यह इसका स्वाभाविक धर्म है या नैमित्तिक ? यदि स्वाभाविक धर्म है तो मुक्त जीव भी मुक्ति अवस्थासे छूट जावेगा, यदि कहो वहांसे निकले हुए चावलकी तरह वह जगत् पुनः सम्बन्ध नहीं करेगा तो पर्याय बदलना स्वाभाविक नहीं रहा। छिलके में चावल पीछेसे पैदा होना है और छिलकेका होना चावलकी उत्पत्तिका निमित्त है, इनका स्वाभाविक सम्बन्ध नहीं है।

(उत्तर)प्रत्येक द्रव्यका पर्याय बदलते रहना स्वाभाविक धर्म है, परन्तु वे पर्यायें दो प्रकारकी होती हैं एक स्वाभाविक और दूसरी वैभाविक अर्थात् नैमित्तिक। छः द्रव्योंमें से धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चार द्रव्योंमें स्वाभाविक सदृश ही पर्यायें होती हैं और शेषके दोनों द्रव्य जीव और पुद्गलमें दोनों प्रकारकी अर्थात् पर निमित्तसे वैभाविक और उसके अभावमें स्वाभाविक। जबतक जीवका कर्मके साथ सम्बन्ध रहता है तबतक जितने अंशमें कर्मका सद्भाव है उतने अंशमें वैभाविक और जितने अंशमें कर्म का अभाव है उतने अंशमें उसका स्वाभाविक परिणमन होता है। मोक्षमें जीवका कर्मोंसे बिल्कुल सम्बन्ध छूट जाता है अतः वहां पर उसके ज्ञानादिक गुणोंका स्वाभाविक परिणमन ही हुआ करता है। परन्तु परिणमन होता अवश्य है, क्योंकि वह सर्वज्ञ होनेसे इस क्षणमें वस्तुकी वर्तमान पर्यायको वर्तमान और भविष्य पर्यायको भविष्य जानता है। दूसरे क्षणमें वह उसीको यथाक्रम भूत या वर्तमान जानता है। इत्यादि। मुक्त जीव निज मुक्त अवस्थासे छूटकर पुनः संसारमें कारण के अभावसे नहीं आ सक्ता। छिलके और चावलका दृष्टान्त है और दृष्टान्त सर्वदेशोंमें नहीं मिला करता। जिस प्रकार दृष्टान्तमें चावल और छिलका यह दो जुदे पदार्थ हैं और उनका सम्बन्ध स्वाभाविक नहीं वरन नैमित्तिक है और जब-

तक चावलके ऊपर छिलका रहा करता है तभी तक वह उत्पन्न होता है और छिलकेके अभावमें उसका उत्पन्न होना बन्द हो जाता है, ठीक उसी प्रकार दार्ष्टान्तमें जीव और कर्म्म यह दो जुदे पदार्थ हैं, उनका सम्बन्ध स्वाभाविक नहीं वरन नैमित्तिक है और जबतक जीवके ऊपर कर्म लगा रहता है तबतक वह अनेक योनियोंमें उत्पन्न होता रहता है और जिस समय कर्मका उससे सम्बन्ध छूटजाता है उस समय जीव मोक्ष होकर निज शुद्ध स्वरूपमें रहता है ॥

(३) प्रश्न-जब कोई मुक्त जैनी इस शरीरका त्याग करेगा तो लेटे हुए शरीरमेंसे जीव लेटा हुआ निकलेगा या खड़ा हुआ ? साकार जीव शरीरके अन्दरसे किस प्रकार निकलेगा ? क्योंकि उसको रोकने वाला पुद्गल का स्कन्ध मौजूद है और वह मोक्षशिला तक यदि अपनी उर्द्ध्व गतिसे चला गया तो शिलाके ऊपर कैसे जावेगा ? यदि इच्छापूर्वक क्रियासे गया तो मुक्त नहीं हुआ, यदि स्वभाव से गया तो उस का प्रकार बतलाइये ।

(उत्तर) जीवन्मुक्त पुरुषोंका प्राणान्त खड्गासन या पद्मासन से ही होता है लेटे हुये कदापि नहीं । जीवको आयु कर्म्म ही शरीर में रोकने वाला है, उसके समाप्त होते ही जीव शरीर में नहीं रह सक्ता । वह अति सूक्ष्म होनेसे मोक्ष शिला को भेदकर लोकके अन्त तक बिना इच्छा ही स्वभाव से अग्नि की शिखा के समान जाता है ॥

(४) प्रश्न-प्रत्येक वस्तुमें जो कार्य हो तीन चीजें होती हैं-१ आकृति, २ व्यक्ति, ३ जाति । आकृति कर्त्ताके ज्ञानसे आती है, व्यक्ति उपादान कारणसे । जगत्में जो आकृति है वह किसके ज्ञानसे आई है ? ।

(उत्तर) जगत् कार्य रूप नहीं क्योंकि उसका किसी भी समयमें अभाव न था जगत्की प्रत्येक वस्तुयें अवस्था से

अवस्थान्तर होती रहती हैं परन्तु जगत्का किसी भी समय में अभाव नहीं होता। जो अवस्था इस समय में जगत् की है वह इससे पूर्व क्षणमें जगत्की न थी। इस पर्य्याय बदलने की अपेक्षा से जगत् को कथंचित् कार्य्य रूप भी कह सक्ते हैं। वर्तमान क्षण में जो जगत् की अवस्था है उसका कारण अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती जगत् की अवस्था थी। अतः एक अपेक्षा से जगत् कार्य और कारण दोनों रूप है। कार्यकी कारण से व्याप्ति है जो कि दो प्रकार का होता है एक चैतन्य और दूसरा जड़। किसी किसी चैतन्य कर्त्ता में कार्य्य के पूर्व ही उसकी आकृति का ज्ञान सम्भव है परन्तु सर्व में नहीं। जड़ कारण में तो कार्य्य की आकृति का ज्ञान होना सर्वथा असम्भव है। इस कारण कि जगत् कार्य्य रूप नहीं अतः यह प्रश्न ही उसके सम्बन्ध में व्यर्थ है॥

(५) प्रश्न-आप जीवको साकार मानते हैं और साकार सावयव और कार्य होता है। जीवकी आकृति किसके ज्ञानसे पैदा हुई और व्यक्ति किस उपादान कारणसे पैदा हुई। कोई साकार वस्तु नित्य हो नहीं सकती।

(उत्तर) जीव अनन्त गुणों का समुदाय है और उसका आकार भी है क्योंकि उसने आकाशका कुछ न कुछ क्षेत्र घेरा है। यदि उसका आकार न मानो तो बन्ध्या के पुत्र समान वह भी अवस्तु हो जायगा। जीव नित्य है परन्तु कर्मानुसार वह जिस शरीर को प्राप्त करता है उसके प्रदेशों का आकार भी उसी शरीर के अनुसार हो जाता है। जीव के निज कर्मानुसार उसकी अनेक अवस्थाओं को कथञ्चित् कार्य्य कह सक्ते हैं और उनका उपादान कारण जीव और निमित्त कारण कर्म्म है साकार वस्तु के नित्य न होने का नियम नहीं क्योंकि आप भी अपने ईश्वर जीव और प्रकृति इन तीन पदार्थों को नित्य मानते हैं और वे सब साकार हैं। यदि इनको सा-

कार (स्वरूपवाला) न मानिये तो वे आकाश कुसुमके समान कल्पित ही सिद्ध होंगे।

(६) प्रश्न-आपका साकार जीव जड़ द्रव्योंका समुदाय है या चैतन्य द्रव्योंका ? क्योंकि आकारका लक्षण ही यह है कि जो "नियत द्रव्योंका समुदाय हो" यदि जीवके अवयव जड़ हैं तो चेतनता कहांसे आई ? यदि चैतन्य हैं तो चैतन्य में संयोग गुणको ग्रहण करनेकी योग्यता सिद्ध कीजिये।

(उत्तर) जीव द्रव्योंका नहीं वरन अनन्त गुणोंका समुदाय है और उसके सब गुण चैतन्य हैं। जीवके अवयव जड़ नहीं वरन चैतन्य हैं और उसमें किसी दूसरे द्रव्यके गुण कदापि नहीं आते। जीवमें एक वैभाविकी शक्ति है और जब तक उस शक्तिको आत्मा के भिन्न भिन्न गुणोंको आच्छादन करने वाले भिन्न भिन्न कर्मोंका निमित्त रहता है तब तक वह आत्माके उस उस गुणको विभाव रूप परिणमाया करती है। आत्मा में किसी दूसरे द्रव्य का गुण कदापि नहीं आता वरन दूसरे द्रव्यके साथ उसका बन्ध होने से उसके ही गुणों में विकार उत्पन्न हो जाता है।

(७) प्रश्न-आप जो यह मानते हैं कि सूर्य्य चन्द्रादिक सावयव वस्तुओंका अभाव कभी नहीं होता इसमें प्रमाण क्या ? क्योंकि सावयव वस्तु नित्य नहीं रहती।

(उत्तर) सूर्य्य चन्द्रादिक पुद्गल परमाणुओं के स्कन्ध हैं और पुद्गल परमाणुओंकी बाह्य निमित्तानुसार मिल बिछुड़कर अनेक प्रकारकी वस्तुयें इस संसारमें बना करती हैं। पुद्गलके सूर्य चन्द्रादि स्कन्धोंका स्थूलाकार शाब्दप्रमाणसे नित्य है इसके विरुद्ध जितने प्रमाण दिये जाते हैं वे सब दूषित हैं। यह ध्यान में बिल्कुल नहीं आता और न किसी प्रमाण से ही सिद्ध होता है कि पुद्गल परमाणुओं के अनेक प्रकार की वस्तुयें बनाने का कार्य्य किसी समय में बन्द हो जाय और वे समय विशेष तक प्रलय में जो कि सृष्टि काल के ब-

राबर ही हैं कारण सुषुप्त या सूक्ष्मावस्थामें ही विकार पड़े र-हैं। जब कि पुद्गल परमाणुओंका अनेक वस्तुयें बनाना सदैव से है और सदैव रहेगा तब संसार भी सदैव से है और उसके सूर्य्य चन्द्रादिक भी सदैव से हैं यह सिद्ध हुआ। जब वे सदैव से हैं तब उनका अभाव कभी नहीं था यह स्वतः सिद्ध है। सावयव वस्तुओंके नित्य न होने का नियम नहीं क्योंकि सावयव शब्दके दो अर्थ हैं एक तो अवयव सहित और दूसरा अवयव जन्य। एक परमाणु जितने आकाश के स्थान को घेरता है उससे अधिक आकाश के स्थान के घेरने वाले को अवयव सहित और प्रथम जिसके अवयव भिन्न भिन्न हों और पीछे उन अवयवों के मिलने से जो बना हो उसको अवयव जन्य कहते हैं। यदि सावयव शब्दसे आपको प्रथम अर्थ इष्ट है तो आप के माने हुए सर्वव्यापी ईश्वर में व्यभिचार आया क्योंकि वह साकार (स्वरूपवाला) और सर्व क्षेत्र व्यापी होकरके भी नित्य है। यदि दूसरा अर्थ इष्ट है तो असिद्ध हेत्वाभास है॥

(८) प्रश्न-जब आप जगत्को न तो प्रवाहसे अनादि मानते हैं न स्वरूपसे तो तीसरे प्रकारके 'अनादि' की परिभाषा बतलाइये और प्रमाणसे भी सिद्ध कीजिये। यदि कोई परिभाषा न मिले तो स्पष्ट सिद्ध होगा कि जगत् प्रवाहसे अनादि है जैसा कि आर्य्यसमाज मानता है।

(उत्तर) शब्दों का उत्थान और पतन समयानुसार हुआ करता है और कोई कोई शब्द जो किसी समयमें किसी अर्थका द्योतन करते थे दूसरे समयमें उस से विरुद्ध किसी दूसरे अर्थका ही द्योतन करने लगते हैं। किन्हीं किन्हीं शब्दों से उनके शब्दार्थका ग्रहण न होकर एक अवधारित अर्थ विशेषका ही ग्रहण होता है और कोई शब्द किसीके लिये रूढ़ि हो जाते हैं और उनसे उनके शब्दार्थ भर पदार्थोंका

बोध नहीं होता। इत्यादि। दृष्टान्तके अर्थ एक आर्य्य शब्द को ही लीजिये। यद्यपि इसका अर्थ श्रेष्ठ पुरुष है और सब ही श्रेष्ठ पुरुषोंके अर्थ यह व्यवहार किया जा सकता है, पर आज कल यह शब्द आर्य्यसमाज (स्वामी दयानन्द जी सरस्वतीके अनुयायी एक समाज विशेष) के पुरुषोंके अर्थ रूढ़ि सा हो गया है और उससे विशेषतः सर्वसाधारणको उन्हीं पुरुषोंका बोध होता है। जिस समय कोई शब्द विशेष किसी पदार्थ विशेषके ही लिये रूढ़ि हो जाता है या अपने पूर्व अर्थका द्योतक नहीं रहता, उस समयमें वक्ताको अपना अभिप्राय ठीक ठीक व्यक्त करनेके अर्थ नवीन शब्द और उस की परिभाषा गढ़नी होती है। संसारमें समयानुसार इसी प्रकार शब्दोंका उत्थान और पतन या प्राचीन शब्दोंका लोप और नवीनकी सृष्टि बराबर होती रहती है। ठीक इसी प्रकार प्रवाह शब्दका अर्थ यह है कि जिसका क्रम (सिलसिला) बन्द न हो और यह शब्द नदीमें जल बहने के क्रमको देखकर व्यवहारमें लाया जाने लगा है। जिस प्रकार नदीमें एक जल बह जाता है उसके बाद दूसरा आता है, फिर तीसरा और इसी प्रकार परन्तु उसमें जल बहने का क्रम सदैव बराबर जारी रहता है अर्थात् उस नदीका अभाव कभी नहीं होता। निश्चयसे यह प्रकार इस सदैव से विद्यमान संसार तथा प्रतिक्षण अवस्था से अवस्थान्तर हुआ करता है परन्तु इसका नाश (कारण रूप में ही होना) कभी नहीं होता। यद्यपि इस संसारको हम प्रवाह रूप से अनादि कह सकते थे परन्तु इस भयसे कि (आजकल आर्य्यसमाज और उसके सिद्धान्तोंकी जानकारी आर्य्यसमाजी भाइयोंके पुरुषार्थ और समयानुकूल प्रवृत्तिसे सत्य न होने पर भी अधिक होनेसे) कहीं सर्व साधारण इस संसारको आर्य्यसमाजियोंके प्रवाह रूप (कभी प्रलय हो जाने वाला और कभी उत्पन्न हो जाने वाला)

अनादि न समझलें हमको उसे एक तीसरे प्रकारका अनादि बतलाना पड़ा। उस अनादिकी परिभाषा हमने यह की कि जो प्रति क्षण अवस्थासे अवस्थान्तर होने पर भी कभी बना न हो अर्थात् जिसका किसी भी समयमें अभाव न हो। इस में हमारे अर्थके विपर्यय हो जानेका अभाव और यथार्थ वस्तु स्वरूपका प्रकाशन प्रमाण है। संसारका किसी भी समयमें अभाव न होना सातवें प्रश्नके उत्तरमें सिद्ध किया जा चुका है॥ सत्‌का विनाश और असत्‌का उत्पाद कभी नहीं होता इस लिये समस्त पदार्थोंका समूह रूप जगत नित्य है और उस की प्रतिक्षण स्वभावसे ही अवस्था बदलती रहती है इस लिये अनित्य है॥

(९) प्रश्न -धर्म, अधर्म और काल तीन द्रव्य और एक लोकाकाश व्याप्त प्रत्येक आकाश के प्रदेश में एक काल अणु मौजूद है तो धर्म अधर्म किस स्थल में रहते हैं और काल के अणु किसी प्रमाणसे सिद्ध कीजिये। और धर्म किन गुणोंका समुदाय है यह बताइये।

(उत्तर) जिस प्रकार एक आम्र के फल में भिन्न भिन्न इन्द्रियों से गोचर होने वाले स्पर्श, रस गन्ध और वर्ण के भिन्न २ मूर्तिक गुण एक ही प्रदेश में रहते हैं और एक दूसरे को बाधक नहीं होते उसी प्रकार सूक्ष्मातिसूक्ष्म अरूपी धर्म अधर्म और काल द्रव्य लोकाकाश में ही रहते हैं और उन सब का एक ही प्रदेश है। जिस प्रकार पुद्गल परमाणु द्रव्य है उस ही प्रकार कालाणु भी द्रव्य है। क्षणध्वंसित्व हेतु से समय पर्याय सिद्ध होती है और पर्याय द्रव्य के बिना नहीं होती इसलिये समय काल द्रव्य की पर्याय है। इस प्रकार अनुमान प्रमाण से काल द्रव्य सिद्ध होती है। द्रव्यों में दो प्रकार के गुण होते हैं,एक सामान्य और दूसरे विशेष। सामान्य गुण उन [illegible] को कहते हैं जो सब द्रव्यों में पाये जाते हैं और विशेष उन्हें जो उस द्रव्य विशेष में ही। धर्म द्रव्य में अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व,

आदि सामान्य गुण और जीव और पुद्गल के गमन में (मछली के गमन में जल की भांति) उदासीन निमित्त कारण आदि होना विशेष गुण हैं ॥

(१०) प्रश्न-कर्मको आप द्रव्य मानते हैं या गुण ?, यदि द्रव्य मानें तो सातवां द्रव्य हो जाता है । यदि गुण है तो किस द्रव्यका ? ।

(उत्तर) कर्म दो प्रकार के हैं एक भाव कर्म दूसरा द्रव्यकर्म । भावकर्म तो जीव के चारित्र गुण की विकृत पर्याय है और द्रव्य कर्म पुद्गल द्रव्य की एक पर्याय विशेष है जिसका कि बन्ध आत्मा से उसके भाव कर्म (रागद्वेष) के कारण होता है ॥

(११) प्रश्न--क्या मुक्त जीवोंमें जिनको आप ईश्वर मानते हैं कोई बड़ा छोटा होता है या एक से ? यदि एकसे होते हैं तो हर पत्रपर लिखा होता है, 'जिनवर' और 'जिनेन्द्र' यह कोई मुक्त हैं या उनसे अलग हैं ?, यदि मुक्त जीव हैं तो और मुक्तोंसे उत्तम कैसे हैं? यदि उत्तम नहीं है तो यह नाम निरर्थक है । यदि मुक्त जीव ही बड़ा छोटा होता है तो किस लिहाज़से ?

(उत्तर) यद्यपि मोक्ष में मुक्त जीवों के ज्ञान सुखादिक गुण एक से होते हैं परन्तु उनमें परस्पर क्षेत्र, काल, गति, लिङ्ग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येक बुद्ध बोधित, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या, और अल्पबहुत्व इन बारह अनुयोगोंसे भेद होता है । इन भेदों का कारण यथाक्रम यह है कि (१) कोई भारत क्षेत्र से सिद्ध हुए कोई विदेह क्षेत्र से (२) कोई अवसर्पिणी काल में सिद्ध हुये कोई उत्सर्पिणी में(३) कोई मनुष्य गतिसे या सिद्ध गति से (४) कोई किसी भावलिङ्गसे सिद्ध हुये कोई किसी से (५) कोई तीर्थङ्कर होकर सिद्ध हुये कोई सामान्य केवली से (६) कोई एक चारित्र से सिद्धहुये कोई दो तीन चारित्र से (७) कोई बिना पर उपदेश के ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष में रत हुये कोई पर उपदेश के (८) कोई

एक ही ज्ञान से सिद्ध हुये कोई दो तीन चार से (९) कोई उत्कृष्ट अवगाहना पांच सौ पच्चीस धनुष से सिद्ध हुये कोई जघन्य कुछ कम साढ़े तीन हाथ से (१०) कोई दूसरे सिद्ध से जघन्य अन्तर दो समय से सिद्ध हुये कोई उत्कृष्ट छःमहीने से (११) कोई जघन्य एक समय में एक ही सिद्ध हुआ कोई उत्कृष्ट एकसौ आठ के साथ और (१२) कोई समुद्र आदि जल भाग से सिद्ध हुये कोई स्थल भागों से। सर्व जीवन्मुक्त जीव जिन कहे जाते हैं और उनके दो मोटे भेद हैं एक सामान्य केवली और दूसरे तीर्थङ्कर। तीर्थङ्करों ने अपने पूर्व जन्म में षोडस कारण भावना आदि भाकर विशेष पुण्योपार्जन किया है अतः उनका महत्व इस संसारमें अन्य सामान्य केवलियों से विशेष रहता है और उनसे संसारी जीवोंको उपदेशादिक का विशेष लाभ पहुंचता है इससे उनको जिनवर या जिनेन्द्र कहते और वे मुक्त जीवोंमें ही हैं। यद्यपि एक ही सर्वोच्च कक्षा में उत्तीर्ण सब विद्वान एक से ही हैं परन्तु उन में से जिसके द्वारा सर्व साधारण को विशेष लाभ होता है उसको वह औरों से उत्तम गिनकर पूज्य दृष्टि से देखते हैं उसी प्रकार सर्व एक से मुक्त जीवों में तीर्थङ्कर सर्वोच्च गिने जाते हैं। यह उनका उच्चपना जीवन्मुक्त अवस्था में ही रहता है मोक्ष में उपर्युक्त बारह अनुयोगों के भेद को छोड़कर ज्ञान सुखादि गुण में सब एक से ही रहते हैं॥

(१२) प्रश्न-जो लक्षण धर्मका किया है वह जीव और गमनमें सहकारी है यह लक्षण अतिव्याप्त है क्योंकि आकाश भी गमनमें सहकारी है यदि आकाश न हो तो गमन होही नहीं सक्ता, आकाशमें ही चीजें निकलतीं, दाखिल होतीं और फिरा करती हैं।

(उत्तर) गति परिणत समस्त जीव और पुद्गलोंको उदासीनपने से युगपत् गति सहकारित्व धर्म द्रव्यका लक्षण आकाश में अतिव्याप्त नहीं, क्योंकि गमनमें सहकारित्व आकाशका लक्षण नहीं है। यदि होता तो अलोकाकाशमें भी

जीव और पुद्गल चले जाते। आकाश द्रव्य का लक्षण समस्त द्रव्यों को युगपत् अवकाश दातृत्व है। अतः धर्म द्रव्य का उपर्युक्त लक्षण सर्वथा निर्बाध है॥

(१३) प्रश्न जब लोकशिखरपर शुद्धशिला अढ़ाई द्वीपके परिमाणकी नदी है जो जीव नीचे से जायंगे वह शिलाके नीचे फ़कत धर्म द्रव्यकी सहायतासे जायंगे, शिलाके ऊपर शिलाको फोड़कर जायंगे या उसमें दरवाजे लगे हुएहैं, लोकाकाश के अन्दर धर्म द्रव्य है, उसकी सहायतासे जीवमें गति होगी और शिलाके ऊपरकी तरफ लोकाकाश है नहीं ऊपरको तरफ गति किस तरह होगी ?।

(उत्तर) सिद्ध शिला अढ़ाई द्वीप के प्रमाण (नदी नहीं वरन) रत्नों की एक शिला विशेष है और वह लोकाकाशके अन्त से बारह योजन नीचे है। धर्म द्रव्य का सद्भाव लोकाकाश के अन्त तक है अतः जीव उस सिद्ध शिला को अति सूक्ष्म और अमूर्तिक होने से भेद कर लोकाकाश के अन्त तक चला जाता है॥

(१४) प्रश्न--जब कि हरएक आत्मा यथार्थमें लोकाकाशके परिमाण और पर निमित्तसे छोटा बड़ा होता है और उस को संकोच विकाशकी शक्ति है तो कर्मबन्धनसे छूटकर उस को लोकाकाशके बराबर होजाना चाहिये, जब कि अपने यथार्थ परिमाण तक न पहुंचा, कर्मसे मुक्त किस तरह हुआ?।

(उत्तर) आत्मा के प्रदेशों में संकोच विस्तार की शक्ति है और अधिक से अधिक उसके प्रदेशों का विस्तार लोकाकाश भर तक हो सकता है। जीव के प्रदेशों में जो संकोच विस्तार होता है उसका निमित्त कारण कर्म का उदय है। जब तक जीव में कर्मों का सद्भाव रहता है तब तक उसके प्रदेशों में संकोच विस्तार हुआ करता है। मोक्ष में जीव के कर्मों का सद्भाव नहीं अतः उसमें संकोच विस्तार नहीं होता और उसका आकार उसके चरम शरीरसे किञ्चित् ऊन रहता है॥

(१५) प्रश्न-संकोचका फल लम्बाई चौड़ाईका घटना और मोटाईका घटना अतः जीवकी मोटाईका परिमाण बतलाइये ? क्योंकि विस्तार तो इतना है कि लोकाकाशके बराबर है और संकोच इतनाहै कि चिउंटीसे छोटे शरीरमें आजाता है, इसलिये मोटाई किसी प्रमाणसे सिद्ध करनी चाहिये ?।

(उत्तर) जिस शरीर को जीव प्राप्त होता है उसके प्रदेशों का आकार उसी शरीर प्रमाण हो जाता है अतः जीव की लम्बाई चौड़ाई और मोटाई उसी शरीर प्रमाण है ॥

(१६) प्रश्न-क्या मनुष्यके बिना किसी और शरीरसे भी मुक्त हो सक्ता है ? यदि नहीं हो सक्ता तो यह कहना चाहिये कि वह ऐसा बंधा हुआ है लोकाकाशके बराबर परिमाण वाला होने पर भी मनुष्यके शरीरसे छोटा होगया, अपनी यथार्थ अवस्था तकनहींआया, यह बंधनहै मुक्तिनहीं।

(उत्तर) मनुष्य शरीर बिना अन्य शरीर से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती क्योंकि मोक्ष के कारण महा व्रतादि धारण करने की योग्यता अन्य शरीर में नहीं। आत्मा का लोकाकाशके बराबर उसके प्रदेशोंका विस्तार होना कर्म्म जन्य है और मोक्षमें कर्मोंका सद्भाव न होनेसे आक्षेप व्यर्थ है ॥

(१७) प्रश्न-कर्मका बंधन अनादि है उस वक्त तो जीव लोकाकाशके बराबर होता नहीं और मुक्तिमें मनुष्य शरीरसे कुछ छोटा होता है लोकाकाशके बराबर कब था, जब उसको यथार्थ दशामें कहा जाय ?।

(उत्तर) जीव में लोकाकाश तक अपने प्रदेश विस्तार कर सकनेकी शक्ति है और उसकी व्यक्तता कर्म्मोंसेही होती है। जीव केवल समुद्घात (जो कि सकल अर्थात् सशरीर परमात्माके उनके चार अघातिया कर्मोंमेंसे आयु कर्मकी स्थिति शेष तीन नाम गोत्र और वेदिनी कर्मोंकी स्थिति हीनाधिक होने पर चारों कर्म्मों की स्थिति एक सी अर्थात् आयु कर्म्म के समान ही करने के अर्थ आठ समय में दण्ड, कपाट और प्रतररूप होकर लोकाकाश भरमें आत्म प्रदेशों के फैलने और पुनः शरीराकार रूप होनेकी) क्रियामें ही लोकाकाशके बराबर

होता है और यह उनकी यथार्थदशा नहीं वरन कर्मजन्य है ॥

(१८) प्रश्न अधर्म द्रव्यका लक्षण है जो स्थितिमें सहकारी हो यह पृथ्वी अतिव्याप्त है जो मुक्त जीव सिद्धशिला के ऊपर इनके विराजमान होंगे उनके लोकाकाशसे बाहर होनेके कारण न तो वहां अधर्म द्रव्य होगा, जिससे स्थिति होसके न धर्म होगा जो उनकी गतिमें सहकारी हो उनकी क्या दशा होगी ?।

(उत्तर) गति पूर्वक स्थिति परिणत समस्त जीव और पुद्गलोंको उदासीनपनेसे युगपत् स्थिति सहकारित्व अधर्म द्रव्यका लक्षण पृथ्वीमें अतिव्याप्त नहीं क्योंकि यह लक्षण पृथ्वीमें जाता ही नहीं । आपके वैशेषिक दर्शन में पृथ्वीका लक्षण रूप, रस, गन्ध, स्पर्श वाली किया है न कि स्थितिका सहकारीपना आपका दिया दोष दोषाभास है अतः अधर्म द्रव्यका लक्षण निर्बाध है । मुक्तजीव सिद्धशिलासे बारह योजन ऊंचे लोकाकाशके भीतर ही सर्वज्ञादि गुणोंसे युक्त शुद्धस्वरूप निजानन्दमें मग्न हैं ॥

(१९) प्रश्न-जीव मूर्तिदशाको प्राप्त होता है या मूर्तिमान् शरीरको अपनी गाड़ी या मकान बनाता है मूर्तिका लक्षण क्या है ? जरा इसको बतलावें ।

(उत्तर) आत्माका पुद्गलकी एक पर्याय विशेष कर्मसे अनादि कालसे बन्ध है और जबतक उसमें बन्ध रहता है तबतक आत्मा मूर्तिमान् शरीरोंको भी रखता हुआ कथञ्चित् मूर्त है क्योंकि बन्धमें उभय पदार्थका किसी प्रकार एकत्व होता है । स्पर्श, रस, गन्ध और वर्णपनेको मूर्त्ति कहते हैं और यह मूर्त्तिपना पुद्गल द्रव्यमें ही है ॥

(२०) प्रश्न-आप के मुक्त जीव सिद्धशिलासे बाहर जा-सकते हैं कि नहीं !

(उत्तर) मुक्तजीव सिद्धशिलासे बारह योजन और ऊंचे लोकाकाशके अन्ततक ही जा सकते हैं। उससे बाहर नहीं, क्योंकि आगे उनके गमनमें सहकारी कारण धर्म द्रव्य नहीं है । एकबार मुक्तिस्थानमें मुक्तजीवोंके प्रतिष्ठित हो जाने पर पुनः उनका आवागमन कारणके अभावसे कभी नहीं होता ॥

कुंवर दिग्विजयसिंह बीधूपुरा—इटावह ।

॥ बन्दे जिनवरम् ॥

प्रश्नोत्तर

आर्य्यसमाजके सुप्रसिद्ध विद्वान, प्रचारक और सन्यासी स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती ने "जैनी पण्डितोंसे प्रश्न" शीर्षक एक पैम्फलट उर्दू भाषामें लिखकर दयानन्द वेदप्रचारक मिशनके वास्ते आर्य्य स्टीम प्रेस लाहौर में मुद्रित करवाकर प्रकाशित किया है जिसमें कि आपने जैन विद्वानों से बीस प्रश्न किये हैं। स्वामी जी और सर्वसाधारणके हितार्थ उपरोक्त प्रश्नोंका उत्तर प्रकाशित किया जाता है।

(१) जिस मुक्तिके वास्ते आप जैनधर्म्मको ग्रहण किये हैं वह जीवका स्वाभाविक गुण है या नैमित्तिक? अगर स्वाभाविक धर्म है तो इसके वास्ते जैन धर्म्मकी क्या ज़रूरत है? अगर नैमित्तिक धर्म है तो उसका निमित्त यानी सबब क्या है?

(उत्तर) मोक्ष जीवका कोई गुण नहीं वरन अनादि बद्ध कर्म्म मलसे छूटे हुये आत्माकी शुद्ध पर्याय है और उसी अनादि कर्म्म मलके बन्धनसे मुक्त होने के अर्थ जैन धर्म्मकी आवश्यकता है।

(२) मुक्ति नित्य है या अनित्य, अगर नित्य है तो उसका किसी कारण से होना किस तरह मुम्किन है? क्योंकि नित्य की तारीफ ये है जो किसी कारणसे पैदा न हो। अगर अनित्य है तो उसका अनन्त होना बन नहीं सक्ता क्योंकि सृष्टिमें ऐसी कोई शय नहीं जिसका आदि हो और अन्त

न हो। क्या किसी जैनी ने एक किनारा वाला दरिया या एक हद वाली शय देखी है?

(उत्तर) जीवकी मुक्ति पर्याय अनादि कर्म बन्ध और उनके कारण रागद्वेषादिके अभाव होने पर प्रगट होनेसे नित्य नहीं और पुनः नाश न होने से अनित्य भी नहीं है। वरन वह प्रध्वन्साभाव या धान से निकले हुये चावलकी अवस्था समान सादि अनन्त है।

(३) जैन धर्म में सृष्टिकर्ता तो ईश्वर को मानते ही नहीं। जिस परमाणु पुद्गल या भूतों के स्वभावसे सृष्टिकी पैदाइश तसलीम करते हैं वह स्वभावसे गतिवाला यानी मुतहर्रिक वा लिज़ात है या गति शून्य यानी हर्कतसे मुबर्रा? अगर गतिवाला है तो संयोग परमाणुओं में हो नहीं सक्ता क्योंकि सबकी गति यानी हर्कत बराबर होने से जो दरम्यान में फासला है वो बना ही रहेगा। अगर गैर मुतहर्रिक यानी गति शून्य तसलीम करें तो भी संयोग नहीं हो सक्ता लिहाजा कोई शय बन नहीं सक्ती।

(उत्तर) जैन धर्म सृष्टिकी उत्पत्ति नहीं मानता वरन केवल ज॰के भीतर की समस्त वस्तुओंका अवस्थासे अवस्थान्तर होना मानता है। परमाणुओं में गति करने या संयोग वियोग होने की शक्ति है परन्तु उनकी व्यक्तता अन्य कारणों पर अवलम्बित है और कारणोंकी भिन्नता उनको मिलने से दोषापत्ति व्यर्थ है।

(४) क्या जैन धर्मके वो आचार्य जिन्होंने जैन धर्म के शास्त्र जो लिखे राग से रहित थे या राग वाले? अगर राग से रहित थे तो उन्होंने शास्त्र कैसे बनाये? अगर रागवाले थे तो मुमकिन है ये ग्रंथ किस तरह प्रमाण हो सक्ते हैं?

(उत्तर) जैन धर्मके शास्त्रकर्ता आचार्य स्वल्प रागी

अर्थात् सांसारिक विषय भोगों से नितान्त विरक्त परन्तु परोपकार में तल्लीन थे और वह उनका स्वरूप राग उन के शास्त्रों को सर्वज्ञ वचन प्रमाण रखने से अप्रमाणिक करने में कारण नहीं है।

(५) आप लोग जो जगत को अनादि मानते हैं तो जगत प्रवाह से अनादि है या स्वरूप से ? अगर प्रवाह से अनादि है तो उसका सबब क्या है ? क्योंकि कोई प्रवाह बिला सबब हो नहीं सक्ता। अगर स्वरूप से मानते हैं तो विकार क्योंकर हो सक्ते हैं ? क्योंकि विकारों में पहिला विकार पैदा होता है। जो चीज पैदा होती है वो ही बढ़ती है। ऐसी कोई चीज बतलाओ जो पैदा न हो और बढ़ती हो।

(उत्तर) यह जगत प्रवाहसे अनादि नहीं क्योंकि किसी समय में इसका अभाव नहीं होता और न स्वरूप से ही अनादि है क्योंकि सदैव एकसा नहीं रहता। वरन इस प्रकार अनादि है कि न तो यह कभी बना था और न कभी इसका नाश होगा। इस जगतके समस्त पदार्थ परिणमनशील हैं और इसी कारण वह प्रतिक्षण अवस्थासे अवस्थान्तर हुआ करता है।

(६) जो कर्म का बन्धन अनादि है उसका अन्त किस तरह हो सक्ता है ? क्योंकि अनादि चीज के दोनों किनारे नहीं हो सक्ते। जिसका एक किनारा है उसका दूसरा होना लाज़मी है।

(उत्तर) किसी जीवके कर्मका बन्धन अनादि अनन्त और किसीके प्रागभाव या चावल और उसके ऊपरके धानके छिकले के सम्बध समान अनादि सान्त है। कर्म बन्धका कारण राग द्वेषादि विभाव है और उसके नष्ट हो जाने पर वह भी अन्त को प्राप्त होजाता है।

(७) कर्म जो जीव करता है उसका फल देने वाला आप मानते ही नहीं और यह नियम है कि जो जिससे पैदा होता वो उस से कमजोर होता है और कमजोर किसी जबर दस्त को बांध नहीं सक्ता । लिहाज़ा कर्मों का फल किस तरह होता है?

(उत्तर) उत्पन्न होने वाले का उत्पादकसे हीन शक्ति होने का नियम नहीं । कर्मों का फल मद्यकी भांति उन के उदयकालमें वाह्य निमित्तकी प्राप्तिके अनुसार होता है ।

(८) जो दृष्टान्त शराब वगैरहके पीने में नशा आनेका दिया जाता है वो सही नहीं क्योंकि शराव द्रव्य है और पीना कर्म है । वह नशा शराब द्रव्यका है न कि पीने कर्म्म का । अगर पीने कर्म्मका फल कहो तो पानी पीनेमें भी नशा होना चाहिये क्योंकि पीना कर्म इस जगह भी है ।

(उत्तर) दृष्टान्त अक्षर प्रत्यक्षर सत्य है । फल द्रव्य और कर्म्म दोनों में हो है । यदि द्रव्य में ही मानों तो बोतल में या किसी जीवके बिना शराब के पिये ही उस को नशा होना चाहिये क्योंकि मद्यद्रव्य का सद्भाव है । कर्म्म शब्द जीव की क्रिया का वाचक ही नहीं वरन उस से कार्माण स्कन्ध रूप पुद्गल द्रव्य भी इष्ट है जिस का कि बन्ध जीव की रागादिक क्रिया से होता है । जिस प्रकार मद्यके दृष्टान्त में पीने कर्म का फल यह है कि वह मद्य द्रव्य को किसी मनुष्य के पेट तक पहुंचावे और पेटमें पहुंची हुई शराब द्रव्यका फल यह है कि वह अपने उदयकालमें नशा करे ठीक उसी प्रकार दार्ष्टान्त में जीव की रागादिक क्रियाका फल यह है कि वह तीनों लोकमें भरे हुये कर्माण वर्गणाओं का बन्ध जीवसे करावे और इन बन्ध अवस्था को प्राप्त कर्माण वर्गणाओं (जिनमें कि उनके बन्ध करते समय जीव के

भिन्न २ परिणामानुसार भिन्न २ फल देने की शक्ति हो गयी है) का फल यह है कि वह अपने उदयकालमें भिन्न २ फल बाह्य निमित्तानुसार दें।

(९) इस में क्या प्रमाण है कि जैन शास्त्रोंको जैनों के आचार्यों ने लिखा है ? क्योंकि आज तो जैन आचार्य प्रत्यक्ष लिखते हुये तो नजर नहीं आते। जब प्रत्यक्ष नहीं तो अनुमान किस तरह हो सक्ता है ! अगर प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों न हों तो शब्द प्रमाण हो ही नहीं सक्ता। पस जैन शास्त्रों के बनाने वाले कोई आचार्य नहीं।

(उत्तर) जैन शास्त्र अक्षरात्मक हैं अतः उनका कर्ता कोई मनुष्य अवश्य होना चाहिये। जिन्होंने उनको बनाया वे ही जैनाचार्य हैं। जैन शास्त्रोंकी निष्पक्षता और यथार्थ वस्तु प्ररूपण उनके कर्ताओं को आचार्य अर्थात् सद्वक्ता सिद्ध करता है।

(१०) जैन लोग जिस प्रत्यक्षको प्रमाण मानते हैं वो किसी द्रव्यका हो ही नहीं सक्ता क्योंकि हर एक चीजकी छः जिम्त होती हैं। प्रत्यक्ष एक तरफ के गुणों का होता है। जैसे एक किताब को जब देखते हैं तो उसके रूप और परमाणुओं का प्रत्यक्ष होता है। जब किसी दीवार को देखते हैं तो भी रूप और परमाणुओं का प्रत्यक्ष होता है। तब किस तरह कह सक्ते हैं कि यह रूप किताबका है और यह दीवाल वगैरह का !

(उत्तर) जैन लोग जिस प्रत्यक्ष को प्रमाण मानते हैं उसका लक्षण "विशदं प्रत्यक्षम्" अर्थात् विशद होना प्रत्यक्ष है और उस में '' प्रतीत्यन्तराऽव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैशद्यम्" अर्थात् प्रतीतिके होने में किसी प्रकारकी रोक न होने और भले प्रकार जान लेने को विशद होना कहने के कारण कोई दूषण नहीं आता।

पदार्थोंके गुण शुद्ध या अशुद्ध होजाते हैं। जीव के चारित्र गुण की अशुद्ध रागादिक परणतिको दूर करने में मूर्तिमें अंकित वीतराग और शान्ति छवि निमित्त कारण है॥

(१८) क्या जीव और अजीव जिन दो पदार्थोंको आप तसलीम करते हैं इनको सप्तभङ्गी न्यायसे मुवर्रा मानते हैं।

(उत्तर) नहीं।

(१९) पाप व पुण्यको तमीज़ करनेके वास्ते आप किस कसौटी को तसलीम करते हैं। यो कसौटी किसी आचार्यने तज़वीज़ की है या अनादि कालसे चली आती है॥

(उत्तर) पाप और पुण्य ज्ञानकी कसौटीसे जाने जाते हैं और वह अनादिकालीन है॥

(२०) आपके जीवोंकी संख्या अनन्त है और काल भी अनन्त है॥ जीवोंकी तादादमें कमी नहीं और जो जीव मुक्त होजाता है। गोया जीवकी तादाद कभी ख़तम या बहुत कम तो न होजायगी। जिससे सृष्टिका सिलसिला खतम हो जावे क्योंकि जिस में आमदनी न हो ख़र्च हो उसका दिवाला निकलना लाज़मी है॥

(उत्तर) जीवोंकी राशिमें नवीन वृद्धि न होने और मोक्षसे न लौटने पर भी उनका निरवशेष अन्त न होगा॥ यथा आपके माने हुये सर्व व्यापी और अनन्त ईश्वरका किसी दिशा विशेष में किसी जीवके निरन्तर चले जाने पर॥

कुंवर दिग्विजयसिंह, बीधूपुरा (इटावह)

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभाकी आज्ञानुसार मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य ने रामनारायण प्रेस इटावा में छपाकर प्रकाशित किया।

ता० १ जून १९१२ संख्या १०००